International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 12 Issue 12 || December 2023 || PP. 161-165

भारतीय संगीत में तबले की उत्तपत्ति का संक्षिप्त परिचय तथा सुगम संगीत की शैलियों में तबला वादन का स्थान

दीपिका तिवारी

Research scholar, म्यूजिक , अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म. प्र)
Research scholar = Deepika Tiwari
(Music , Awadhesh Pratap singh vishwavidhyalay rewa madhya Pradesh)

सारांश :-

प्राचीन काल से ही भारत में संगीत के विषय मे गायन को प्रथम स्थान प्राप्त है पूरे विश्व में आज भी यह ज्ञात होता है कि संगीत का उद्गम सर्वप्रथम मनुष्य के गले (कंठ) से हुई है। लेकिन भारत में अभी भी वही राग– रागनी परंपरा चली आ रही है वाद्यों के क्षेत्र में भारत का अधिक विकास नहीं हुआ लेकिन सच्चाई तो यह है कि पूर्व काल से ही भारत में ही वाद्यों का अधिक विकास हुआ था इनमें से कई वाद्य आज अपने संशोधित और विकसित रूप में आज प्राप्त होते हैं तथा कई इतिहासों में विलुप्त है।

आचार्य भरतमुनी द्वारा रचना की गई नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्य का उल्लेख त्रिपुष्कर नाम से किया गया है। स्वाति मुनि द्वारा इस वाद्य की रचना वर्षा के दिनों में पुष्कर नामक तालाब के छोटे बड़े कमल के पत्ते पर गिरती हुई जल की बूंदों से उत्पन्न गंभीर और मधुर ध्वनियों की प्रेरणा से होती है। इस वाद्य का निर्माण वेदों में उल्लेखनीय दुंदुभि नामक वाद्य के द्वारा ऊर्ध्वक, आलिंग्य व आंकिक ये तीन रूपों में होता है आचार्य भरत के अनुसार वर्तमान समय मे अवनद्ध वाद्य प्रचार में आए। तथा इन्हीं वाद्यों में निरंतन संशोदान से तबले का निर्माण हुआ है प्राचीन काल के संगीतकारों और वादकों के प्रयोग तथा विकास की ऊर्जा का परिचय कराता है। तबले के उत्तपत्ति के बारे में कोई निश्चितता नहीं है कि कब इस वाद्य की उत्तपत्ति हुई और किसने इसका निर्माण किया लेकिन तबला की उत्तपत्ति को मुगल साम्राज्य के काल से प्रचारित रूप में पाया जाता है जहां संगीतकारों ने एक विशेष सुधार और रूपांतरण से इस वाद्य का निर्माण किया है। तबला भारतीय संगीत में अपनी अद्वितीय ध्वनि और रचनात्मकता के कारण विशेष स्थान रखता है।

मुख्य शब्द :- *तबला, ध्वनि, ऊर्ध्वक, आलिंग्य, आंकिक, संगत, त्रिपुष्कर*

शोध प्रविधि :- *शोध की प्रविधि वर्णात्मक है इस लेख में द्वितीयक स्त्रोत, तथा पुस्तक समीक्षा से तथ्य संकलन कर उनका सरलीकरण किया गया है।*

प्रस्तावना :-

कलात्मक दृस्टि से त्रिपुष्कर वाद्य अत्यंत समृद्ध व श्रेष्ठ हैं क्युकी इसमें सारी व्यवस्थाएं थीं नदी किनारे की श्यामा मिट्टी का लेपन कर इसकी गूंज को कम या अधिक किया जाता है। प्राचीन समय में भरत मुनि नें अपने समय के अवनद्ध वाद्यों में मिट्टी से बने मृदंग के तीन रूपों में से आँकिक की आकृति, ऊर्ध्वक की आकृति एवं मध्य और आलिंग्य की आकृति को गोपुच्छ के जैसा कहा है।

हरितक्याकृतिस्तवङ्को यवमध्यस्तथोध्वर्गः।

आलिंग्यश्चैव गोपुच्छह: आकृत्यां संप्रकीर्तितः॥

समय के अंतराल में लगभग 7वीं शताब्दी के पश्चात मृदंग वाद्य में परिवर्तन होने लगा था इस संबंध मे विचार करने पर प्रतीत होता है कि मृदंग के दो भाग में विघटन है और इसके विकसित न होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :-

1. मिट्टी से निर्मित दो से अधिक मुख वाला वाद्य होना और अपने बड़े आकार के कारण आवागमन में कठिनाई होना।
2. एक वादक के सिर्फ दो हाँथ होने के कारण दो से अधिक मुख के वाद्यों का वादन सुविधा पूर्ण न होना।
3. अँकिक की पार्शवमुखी एवं ऊर्ध्वक व आलिंग्य की ऊर्ध्वमुखी स्थिति के कारण वादक को बार – बार हाँथ ऊपर नीचे कर वादन करना अधिक श्रमसाध्य होता है।

इसके अतिरिक्त भरत कालीन संगीत में षडज और माध्यम 2 ग्रामों में प्रस्तुत हुई मूर्छनाओं में षडज स्थिर नहीं रहता था त्रिपुष्कर के तीन मुखी को षडज या मध्यम ग्राम के अनुस्वार स्वरों से मिलाने की व्यवस्था एवं आलिंग्य मुख को निषाद स्वर में मिलाने की व्यवस्था रहती थी। कालांतर में जब संगीत में परिवर्तन आया तो षडज अचल होकर एक ही ग्राम में सब सांगीतिक स्वरूप में मिलाया गया परंतु त्रिपुष्कर जैसे वाद्यों के अतिरिक्त अन्य वाद्यों में मुख का मिलान अलग – अलग शहरों में मिलान का प्रयोजन एक समान नहीं था इत्यादि कारण ऐसे थे जिससे त्रिपुष्कर का प्रचलन कम होता गया। एसे में द्विमुखी वाद्यों का प्रचलन प्रारंभ हुआ अर्थात मृदंग विघटित होकर आँकिक, ऊर्ध्वक व आलिंग्य दो भागों में बाटें जाते हैं। आलिंग्य जोड़ी का प्रचलन जब तक था उसे बैठकर बजाए जाने की सुविधा रही लेकिन आगे चलकर 11 वीं शताब्दी के बाद खड़े होकर गले में लटका कर वादन करने के कारण विपक्ष मुखी एवं उसी का विकसित रूप मृदंग पखावज ढोलक पटह आदि वाद्यों का प्रचलन हो गया जो कि 18 वीं सदी तक प्राचार – प्रसार में रहा द्विपार्श्व मुखी वाद्यों की बढ़ती लोकप्रियता एवं अभिजात्य संगीत में उसके प्रयोग होने के कारण 13 वीं शताब्दी के पाश्चात्य ऊर्ध्व मुखी वाद्यों का प्रचलन अभिजात्य संगीत से हटकर लोकसंगीत में सिमट गया जो कि 17 वीं शताब्दी तक बना रहा यही कारण रहा कि तेरहवीं शताब्दी के पाश्चात मंदिरों में वास्तुशिल्प चित्र में ऊर्ध्व जोड़ी जैसे वाद्य प्रायः दिखाई नहीं पड़ते हैं परंतु 18 वीं शताब्दी से पुनः ऊर्ध्व मुखी वाद्यों का चित्र दिखाई पड़ने लगा।

18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जब ख्याल गायन एवं सहतार जैसे वाद्य तंत्री का प्रसार होने लगा तब संगति के रूप में पखावज वाद्य अनुपयुक्त होने लगा ऐसे समय में सिद्धार खां दाढ़ी नें ऊर्ध्वक व आलिंग्य की जोड़ी का उपयोग तबले के रूप में किया। समय के साथ परिवर्तित करते हुए तबले में कई सुधार किए गए तथा सुधार के उपरांत ख्याल गायकी एवं तंत्र वाद्यों के साथ तबले को संगत के रूप में प्रयोग लाया जाने लगा।

मुगलों द्वारा भारत लाए गए तबले का नाम तब्ल था तथा अरब, फारस, और तुर्किस्तान आदि देशों में अनेक चर्माछादित समतल व ऊर्ध्वमुखी को तब्ल या तबूल शब्द से जानते हैं। तब्ल, तब्लतुर्की, तब्लसामी आदि अरब भाषा के व्याकरण में हैं तब्ल पुलिंग शब्द है और तब्ल: उसका स्त्रीलिंग रूप है । अनेक भाषाओं में प्रायः बड़े आकार के वस्तु को पुलिंग एवं छोटे आकार की वस्तु को स्त्रीलिंग रूप में समझ जाता है अर्थात तब्ल का अर्थ बड़े आकार के अवनद्ध वाद्य के लिए एवं तब्ल: का अर्थ छोटे आकार वाले अवनद्ध वाद्य के लिए प्रयोग होता है। इस प्रकार कालांतर में परिवर्तित स्वरूप तब्लः से – तब्लह, तब्लह से - तब्लअ और तब्लअ से तबला बन गया, जो कि ऊर्ध्वक व आलिंग्य का छोटा एवं विकसित रूप है। द्विलेपन के संदर्भ में ऊर्ध्वक व आलिंग्य में से आलिंग्य को वाम या वामक और ऊर्ध्वक को दाहिना भाग माना गया है।

" द्विलेप नाम वामोर्ध्वक: प्रलेपात् ।

वामके चोर्ध्वके कार्या आहार्य लेपते: स्वरा:।। "

अतः तुलनात्मक दृस्टि से आज भी तबला जोड़ी के दोनों भागों में से बाये भाग को बयां तथा दाहिने भाग को तबला नाम से जाना गया।

सर्वप्रथम 1745 ई. में जयपुर के महाराज सवाई ईश्वरी सिंह के समय में जोड़ी अवनद्ध वाद्य के लिए तबला शब्द का प्रमाण उनके गुणीजनखाना के बहीखाते में मिलता है। ऊर्ध्व, आलिंग्य जैसे नामों का उच्चारण मुस्लिम कलाकारों को कठिन प्रतीत होता था साथ ही मुस्लिम कलाकारों के पास तब्ल नाम का विकल्प भी था इस कारण तबला नाम दिया हो ऐसी संभावना है। ऐसा भी लिखित पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है कि तबले की खोज अमीर खुसरों ने की .... ऐसा कहा जाता है कि पखावज वाद्य को दो भागों में विभाजित करने से तबला वाद्य का निर्माण हुआ परंतु इस बात में सच्चाई कितनी है इसका कोई पुख्ता प्रमाण नहीं मिलता है सिर्फ किताबों में ये वर्णित होने के कारण सब इस बात को स्वीकार करते हैं।

सुगम संगीत की शैलियों मे तबला :-

सुगम संगीत भारतीय संगीत की एक गायन विधा है जिसे भाव संगीत एवं काव्य संगीत भी कहते हैं। यह शास्त्रीय हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से बिल्कुल अलग है। जिस संगीत को सहजता से गाया बजाया जा सके उसे सुगम संगीत कहा जाता है। भजन, गीत, लोकसंगीत और फिल्मी संगीत इत्यादि विधा सुगम संगीत के अंतर्गत आती हैं। सुगम संगीत में ताल का विशेष स्थान है और ताल के लिए अवनद्ध वाद्यों में तबले का स्थान प्रमुख है।

पखावज की परंपरा प्राचीन काल से शास्त्रीय संगीत के साथ वादन में चली आई है किन्तु मुस्लिम संस्कृत और भारतीय संस्कृत में ख्याल गायकी का जन्म बताया गया है जिसके परिणामस्वरूप तबला प्रचलन में आया है। तबला वर्तमान में एक लोकप्रिय एवं प्रचलित वाद्य के रूप में जाना जाता है।

तबला शब्द अरबी तथा फारसी दो शब्द से मिलकर बना है। यह दो लकड़ी के ऊर्ध्वमुखी, खोखले वस्तु में चमड़े द्वारा मढ़े हुए बेलनाकार के रूप में होता है इसे समतल जगह में रख के बनाया जाता है जिसको बयां और दायाँ तबला कहते हैं। अवनद्ध ताल वाद्यों में उत्तर भारत का मुख्य वाद्य तबला है। तबला द्वारा संगीत के लय को प्रदान किया जाता है कहरवा, रुपक, दीपचन्दी, तीनताल, खेमटा, तथा दादरा इत्यादि तालें सुगम संगीत के अंतर्गत आती हैं। भारतीय संगीत की संगत में तबला विशेष स्थान निभाता है संगत में सम + गत जहां 'सम' का अर्थ 'साथ' तथा 'गत' का अर्थ 'चलना' अर्थात साथ चलना संगत है। तबले का स्थान गजल, लोकसंगीत, फिल्मसंगीत, भजन, तथा शास्त्रीय संगीत आदि में होता है। गायक जब गायन प्रारंभ करता है तब तबला वादक ध्यान पूर्वक सुनता है तत्पश्चात अपना प्रदर्शन करता है जिससे गायकी और वादन का समन्वय हो पाए और ऐसा कर संगीत की प्रस्तुति को रंजक बनाने मे सफल होते हैं।

संगत संगीत का महत्त्वपूर्ण और व्यापक तत्व होता है जो सम्पूर्ण रूप से संसार में विद्यमान है संसार के सभी पदार्थ का निर्माण, जीव जंतुओं का निर्माण संगत द्वारा ही संभव होता है। जब दो वस्तुओं का मिलन होता है तब उनके मिलन से तीसरी वस्तु का जन्म होता है इस प्रक्रिया को हम सुसंगत तथा संगत कहते हैं। इस प्रकार संगत का मुख्य उद्देश्य बराबरी में चलना, जुड़ना या किसी स्वरूप में मिलन से है। संगीत के मुख्य तत्वों की व्याख्या करें तो हम उसमें ताल, स्वर, राग, पद, बंदिश, नृत्य तथा अभिनय इन सब को देखते हैं यह सभी तत्व आपस में मिलते हैं या एक दूसरे के साथ मिलकर संगत करते हैं। गायन, वादन, नृत्य का मिला जुला स्वरूप ही संगत है यही स्वरूप संगीत कहलाता है। भरत मुनि, पंडित शारंग देव तथा अन्य कई विद्वानों, ग्रंथकारों ने यह माना है कि गायन, वादन, नृत्य सभी अपने आप में पूर्ण हैं तथा ये तीनों ही विभिन्न कलाओं के संगत का परिणाम हैं अर्थात कह सकते हैं कि संगीत अपने आप में कोई विधि न होकर बहुत सारी कलाओं का मिश्रण है। जब हम किसी सांगीतिक कार्यक्रम का आनंद उठाने के लिए किसी स्थान पर जाते हैं तो हम देखते हैं कि एक गायक मंच पर गायन करता है तथा उसके साथ संगत कलाकार बैठते हैं उनमे से तानपूरा वादक, तबला

वादक, हारमोनियम वादक तथा अन्य संगतकार संगत करते हैं। परंतु हम देखते हैं गायक के साथ प्रमुख संगतकार तबला वादक होता है जो गायन को एक निश्चित लय में रंजकता उत्पन्न कराता है।

सुगम संगीत का प्रमुख उद्देश्य सुनने वालों का रस भावों द्वारा मनोरंजन कराना है दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सुगम संगीत में तान, राग, सरगम, ताल, आदि का प्रयोग कलाकार की अपनी मर्जी के अनुसार होता है। कलाकार किसी भी रचना या बंदिश को अपने कला – कौशल द्वारा बदलकर प्रस्तुत करता है क्योंकि सुगम संगीत का प्रयोजन रंजकता प्रदान करता है। सुगम संगीत की मुख्य शैलियों में गीत, भजन, गजल, आदि आते हैं सुगम संगीत की रचनाएं प्रमुख रूप से दुगुन और मध्यम लयकारी में बजाते व गाते हैं। सुगम संगीत में प्रायः प्रयोग की जाने वाली ताल दादर, कहरवा, दीपचन्दी, धूमली, रूपक, तीनताल, आदि हैं।

सुगम संगीत की विभिन्न शैलियों के साथ तबला संगत का वर्णन निम्नलिखित है :-

1. **गीत के साथ तबला संगत :-** सरल और भाव संगीत के अंतर्गत गाई जाने वाली शैली को गीत गायन कहते हैं। गीत कई प्रकार के होते हैं जैसे :- प्रेम भाव का गीत, देशभक्ति गीत, प्रकृति गीत, राष्ट्रीय गीत इत्यादि होते हैं। जिस प्रकार गीत में सरल और सीधे शब्द और साधारण स्वर समूह प्रयोग किए जाते हैं उसी अनुकूल तबला संगत करते हैं तबला संगत में सरल और सीधे बोल ताल जैसे ठेकों का उपयोग मध्य और एक लय में करते हैं गीत शैली में तबला संगत जितनी सीधी और सरल होगी उतना गीत प्रभावित होता है तबला वादक साधारण ठेका प्रस्तुत करता है तथा गीत की समाप्ति पर अल्प मात्रा में लग्गी लड़ी का वादन करता है और अंत में तिहाई वादन के साथ गीत की समाप्ति करते हैं।
2. **गज़ल के साथ तबला संगत :-** गज़ल मुख्य रूप से कहरवा, दादरा, रुपक, दीपचन्दी, आदि तालों में गाई जाती है गजल के दो रूप हैं
    1. सुगम संगीत में गज़ल
    2. उपशास्त्रीय संगीत के प्रकार से गाई जाने वाली गज़ल

    सुगम संगीत में गाने वाली गज़ल में प्रमुख रूप से शब्द और रस प्रधान है जैसे – चित्रा सिंह, जगजीत सिंह, चंदन सिंह, आदि कलाकारों द्वारा गाई जाने वाली गज़ल हैं वहीं उपशास्त्रीय में गुलाम आली, मेहदी हुसैन, आदि कलाकारों द्वारा गाई गजलें हैं। गज़ल के अनुकूल तबला वादन किया जाता है। सरल भाव की गज़लों में तबला वादन सीधा – सीधा किया जाता है और निर्धारित ठेके के अतिरिक्त तबले की उपज दिखाई जाती है जिसमे मुखड़ा, लग्गी, लड़ी, तिहाई बजाया जाता है। इससे गज़ल में रंजकता बढ़ती है। वही उपशास्त्रीय संगीत में गाई गई गज़ल में रस की भिन्न – भिन्न उत्तपत्ति , अलग – अलग रागों का भी समन्वय होता है जिसमें लग्गी, लड़ी , उपज का वादन संपूर्णता से करते हैं।
3. **भजन के साथ तबला संगत :-** भजन भक्ति भाव पूर्ण संगीत है इसमे दादरा, तीनताल, दीपचन्दी, रूपक, कहरवा ताले मुख्यतः बजाए जाते हैं भजन में तबला वादन ठेके से शुरू होता है भजन के संगत मे प्रायः लय का लगातार एक ही प्रकार से स्पस्ट वादन दिया जाता है और यह प्रायः प्रभावशाली भी प्रतीत होता है। भजन में एक बात ध्यान रखने वाली होती है कि ठेका बिना किसी परिवर्तन के बजे क्योंकि जल्दी – जल्दी ठेका बदलने से भजन के भक्ति भाव और रस को हानि पहुचता है। भक्ति भाव स्थिर और एक रूप होता है भजन की एकरूपता को स्थिर रखने के लिए एक ही लय, चाल, चलन तथा एक ही तरह के ठेके का वादन कई आवर्तनों तक करना चाहिए । भजन की समाप्ति पर तिहाई या लड़ी को बजाकर भजन की सुंदरता को बढ़ाया जाता है।
4. **लोकसंगीत के साथ तबला संगत :-** लोकसंगीत विभिन्न प्रदेशों की संस्कृत को वर्णित करता है प्रत्येक प्रदेश की अपनी – अपनी भाषा के अनुसार लोकगीतों को गाया जाता है। लोकगीतों के माध्यम से पता किया जा सकता है

की किस प्रदेश का लोकगीत गाया जा रहा है। प्राचीन काल में लोकगीत के साथ प्रायः ढोलक, नाल का उपयोग किया जाता था परंतु परिवर्तन के साथ - साथ तबला वाद्य को भी लोकसंगीत में स्थान मिला। लोकसंगीत में दादरा, कहरवा, रुपक आदि तालों को बजाया जाता है।

निष्कर्ष :- सुगम संगीत के संगत के रूप में तबला एक प्रमुख तालवाद्य है जो राग, ताल और लय को सहारा देता है। तबला वादक की विशेषज्ञता से विभिन्न लयों का उजागर किया जाता हैं तथा जानकार तबला वादक बिभिन्न लयकारियों व उपज की कलाकारी प्रस्तुत कर आनंद प्रदान कराता है। तबल सुगम संगीत में रौनकता का कार्य करता है और हर प्रकार के सुगम संगीत के लिए सहयोगी वाद्य के रूप में आवश्यक साबित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ताल वाद्य परिचय, डॉ. जमुना प्रसाद पटेल
2. संगीत विशारद, डॉ. लक्षमी नारायण गर्ग
3. संगीत परिभाषा, श्री नारांतन जनकर
4. शास्त्रीय और सुगम संगीत के रंग काव्य के संग, डॉ. मधुर लता भटनागर
5. तबला वादन, पं महेश कुमार
6. तबला – वादन की विस्तारशील रचनाएं, जमुना प्रसाद पटेल
7. भारत का इतिहास, डॉ। आशिरवादी लाल श्रीवास्तव